असतयुग का उदय

1996 में सर्वोच्च न्यायालय को दिल्ली के वायु प्रदूषण की बू आने लगी। उस समय शहर में 79,000 ऑटोरिक्शा, 28,000 बसें, और 13,000 टैक्सी थी जो कुल वाहनों का मात्र 4.6% थी, परंतु उन पर 65% मुसाफिर सवार थे। दलील यह थी कि यदि इन वाहनो में तकनीकी सुधार लाया जाये तो दिल्ली की हवा साफ हो जायेगी। इसी से पैदा हुई सी.एन.जी. की जादुई छड़ी। परंतु क्या दिल्ली में प्रदूषण कम हुआ? ज़्यादातर पर्यावरणविद् आई.टी.ओ. स्थित प्रदूषण मापन यंत्र के आँकड़ों का हवाला देते हैं, जो दिल्ली के सबसे व्यस्त चौराहे पर स्थित है। परंतु शहर में छः और मापन यंत्र हैं जो अशोक विहार, सिरी फोर्ट, जनकपुरी, निज़ामुद्दीन, शहज़ादा बाग, और शाहदरा में स्थित है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण मण्डल के अनुसार प्रथम चार रिहाइशी इलाकों मं हैं और बाकि दो औद्योगिक क्षेत्र में। अगर इन स्थानों के आँकड़ों को लेकर वर्ष 2000-01 और 2001-02 की तुलना की जाये (जिसके बीच सी.सन.जी. व्यवस्था को लागू किया गया) तो पता चलता है कि प्रदूषण की मात्र केवल 10% कम हुई है।

सौ में दसवा हिस्सा कम करने में दिल्ली की तीन चौथाई आबादी को (जिसके पास अपना निजी वाहन नहीं है) अनगिनत और अवर्णित मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं। बसों की संख्या कम हो गई है, आने जाने में रोज़ 3-4 घंटे लग जाते हैं जिसमें आधा वक्त तो बसों के इंतज़ार में गुज़र जाता है। एक तरफ किराया बढ़ गया है तो दूसरी तरफ सी.एन.जी. बस उतने मुसाफिरों को ढो भी नहीं पाती है। ऊपर से आग लगने की चिंता लगी रहती है। ऑटो में, जनता की सुविधा के नाम पर, बिजली की मीटर लगा दिया गया है जो गर्मी और बरसात को सह नहीं सकता और एक थप्पड़ मारने पर अपना रीडिंग बदल भी सकता है। नया बस या ऑटो खरीदने पर भी चैन नहीं क्योंकि सी.एन.जी. भरने के लिये लम्बी लाईन में 2-3 घंटे बर्बाद होते हैं। एक मोटा हिसाब है कि पिछले छः महीनों में मालिकों, मुसाफिरों, और चालकों के रु. 2000 करोड़ का नुकसान हुआ है। इसका जवाबदार किसको ठहराया जाये?

तर्कसंगत विचार और ज़िम्मेदारान व्यवहार का ज़माना हमारे समाज से लुप्त हो रहा है। 10: के फायदे के लिये शहर में एयरकंडिशन कार पर सवार प्रबुद्ध वर्ग निजीकरण की अंधाधुध तारीफ कर रहा है। हाल ही में दिल्ली विद्युत बोर्ड के वितरण व्यवस्था को दो प्राइवेट कम्पनियों ने गुठली के दाम खरीद लिया। एक महीने में इन कम्पनियों ने ऐसा कमाल दिखाया है कि शहर का कोई कोना न होगा जहाँ नागरिक इनके कारनामों से त्रस्त न हो। उनका कहना है कि बिजली के कमी है। लेकिन कटौती के बाद भी शहर को इतनी बिजली मिलती है कि हर परिवार को 1 किलोवाट बिजली सप्लाई की जा सकती है जिससे सारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाये। इसमें वो 12 लाख घर भी शामिल हैं जिनमें आज तक बिजली का कनेक्शन नहीं पहुँचा है। तो फिर बिजली की कमी कहाँ है?

दिल्ली विद्युत बोर्ड का कहना था कि झुग्गी झोंपड़ी और कच्ची बस्तियों में भारी चोरी की वजह से बिजली की कमी पड़ती है। परंतु प्राईवेट कम्पनियों ने कम से कम इस मिथक का पर्दाफाश करके उस तथ्य को उजागर किया जिसकी ख़बर पहले ही पब्लिक को थी – कि अधिकांश चोरी रईस कालोनियों, उद्योगों और सरकारी भवनों में होती है। एक और मज़ेदार आँकड़ा भी सामने आया है, कि विद्युतिकरण और मरम्मत का 90% काम 600 ठेकेदार पहले से ही कर रहे हैं। एक बात जो अभी तक छिपी है, लेकिन जिससे दिल्ली विद्युत बोर्ड के कर्मचारी भली भाँति वाकिफ़ है, वो यह है कि 1978 से बोर्ड में नई भर्ति नहीं हुई है और पुराने कर्मचारी धीरे–धीरे छंटते जा रहे हैं। याने कि पिछले 25 वर्षों में बोर्ड का वास्तविक 'निजीकरण' हो चुका है और आज का निकम्मापन उसी का परिणाम है।

इस चौंकाने वाले रहस्य को जानते हुए भी लगातार दिल्ली जल बोर्ड, दिल्ली परिवहन निगम (डी.टी.सी), दिल्ली नगर निगम (एम.सी.डी), और दिल्ली विकास प्राधिकरण (डी.डी.ए.) के निजीकरण की बात उठती रहती है। इब इसको जानकर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि जल बोर्ड का सारा निर्माण और सुधार कार्य 400 ठेकेदारों के हाथ में है; डी.टी.सी. से दुगनी बसें प्राईवेट मालिक चलाते हैं; नगर निगम में 48,000 सफाई कर्मचारी हैं लेकिन काम 5000 ठेकेदार करते हैं; और डी.डी.ए. के विकास और सेवा निर्माण का काम ठेकेदारों के सुपुर्द है। 'खर्चा कम और काम ज़्यादा' के नारे पर इन सभी 'सार्वजनिक' निकायों का 'ठेकेदारीकरण' पिछले तीन दशकों से चल रहा है। फिर भी सरकार और मीडिया इसी घटिया मंत्र को और ज़ोरों से जाप रही है।

सही सोच को त्यागना लगता है राष्ट्र के 'नवीनिकरण' का अभी हिस्सा है। मिसाल के तौर पर भारतीय रेल में 'कार्य कुशलता' और 'सुरक्षा' की दुहाई देते हुए, नये मण्डलों की स्थापना हो रही है। परंतु रेल मंत्री यह नहीं बताते कि 40 वर्षों में जहाँ मुसाफिरों और माल की संख्या तीन गुना बढ़ गई है वहाँ नई भर्ती बिल्कुल बंद है और देख–रेख का सारा काम ठेकेदार कर रहे हैं। अधिक बोझ में कम श्रमिक होंगे तो सुरक्षा और कौशल बढ़ेगी? इसी प्रकार आंध्र में 'दूरदृष्टि 2020' के नाम से विशाल मशीनिकृत खेतों में निर्यात के लिये कृत्रिम फसल और जड़ी बूटियाँ पैदा की जायेंगी। जिन 2 करोड़ किसानों का इस क्रम में विस्थापन होगा उनके लिये सपने में कोई स्थान नहीं है।

मध्य प्रदेश में यूनियन कार्बाईड की दुर्घटना में 3,000 लोग मारे गये और 1.5 लाख अभी बीमार हैं। उनके नाम पर कार्बाईड से वसूली गई 6,1360 करोड़ की राशि उन को राहत दिलाने की बजाय, भोपाल के तमाम वार्डों को विकसित करने के लिये बाँटा जा रहा है। एक तरफ सुलझी हुई सोच का यह चमत्कार देखने को मिल रहा है, तो दूसरी तरफ 'होशंगाबाद विज्ञान' के नाम से मशहूर शैक्षणिक प्रणाली को पूरे प्रदेश में बंद किया जा रहा है। दोनो पक्ष और विपक्ष के अजीब गठबंधन का कहना है कि 'काट के सीखने' और 'रट के सीखने' में उनको कोई फर्क नज़र नहीं आता और जनता की भावनाओं का आदर करना चाहिये।

राजस्थान में चमत्कारी कार्यों का एक और नमूना पेश है जहाँ देश के भावी उप–राष्ट्रपति वर्षा करवाने के लिये 150 फोलादी पंडितों के मंत्रेच्चारण की ध्वनि के बीच, शिवजी के माथे पर दूध बहा रहे हैं। शायद विश्वविधालयों में कर्मकांड और ज्योतिशास्त्र पढ़ाने का अंजाम यही होगा? ताकि, गुजरात की तरह, मुख्य मंत्री विधान सभा को भंग कर सकें, उप–प्रधानमंत्री कह सके कि प्रदेश में स्थिति 'सामान्य' है, और पार्टी के मुख्य प्रवक्ता स्तुति–गान कर सकें कि यह 'नैतिक साहस' का परिचय है। कोई यह नहीं बताता कि यदि सब कुछ शांतिपूर्ण है, सरकार को जनमत प्राप्त है, तो फिर सभी दलों के विधायकों को चुनावी युद्ध में धकेलने की क्या ज़रूरत है?

इस प्रकार के प्रश्नों के लिये अब अभी के नये समाज में कोई जगह नहीं है। असतयुद्ध का उदय हो चुका है और कोई यदि सत्य को ढूँढने की बात करता है तो उसे तुरंत 'राष्ट्रविरोधी' या 'अनैतिक' या 'अधार्मिक' या 'जनविरोधी' करार दिया जाता है। प्रजातंत्र की नई रचना में विज्ञान का उपयोग हर हाथ को काम और हर पेट को अनाज पहुँचाने के बजाय हर मिसाईल को आसमान में और हर वस्तु को विदेश पहुँचाने के लिये किया जा रहा है। विज्ञान, विधान, और विकास के नीति निर्धारक – जो कभी सी.एन.जी. के प्रदूषणरहित बस में सफर नहीं करते – आतंक के खिलाफ युद्ध कर रहे हैं। लेकिन वे इस बात से आतंकित हैं कि कहीं कोई उल्टा सवाल तो नहीं पूछ बैठेगा?